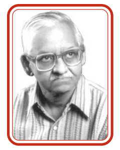

(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-26 मार्च-2016 अंक-3

जो प्रभु को प्राप्त कर लेता है,
वह संसार का सर्वोत्कृष्ट धन और वैभव प्राप्त कर लेता है।
और जो प्रभु को खो देता है, वह सभी कुछ खो देता है
जो प्रभु से हीन है, वह दरिद्र है
और जो उसके साथ आलाप करता है, वही सच्चा धनी है।
किस प्राकर प्रभु से बातचीत की जाती है?
इसे जानना ही विज्ञता है और किस प्रकार प्रभु को हृदय में प्रत्यक्ष करना है?
यह जानना ही परम ज्ञान का विषय है।
कष्टों से पराजित और निराश न हो,
वरं भगवान् की इच्छा पर अपने को सम्पूर्णतया छोड़ दे।
जो भी कष्ट-दु:ख आ पड़े,
उसे प्रभु की महिमा के लिये चुपचाप सहन कर।
यह याद रख कि शिशिर के बाद वसन्त, रात के बाद दिन
और तूफान के बाद शान्ति का आगमन अवश्य होता है
-सन्त श्री थॉमस ए० केम्पिस

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013
हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346
Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

होली के अनंत रंग

- श्री विनोद बंसल

होली भारतीय काल गणना यानि विक्रमी संवत का अंतिम त्यौहार है। फाल्गुनी पूर्णिमा को प्रज्ज्वलित होने वाली होली की आग को नव संस्येष्टी यज्ञ भी कहा जाता है। नव संस्येष्टी यानि नई फसल पर किया जाने वाला यज्ञ। इस समय गेहूं, जौ व चने इत्यादि नवान्न की बालियों को होम करते हुए चारों ओर अग्नि की परिक्रमा की जाती है। चने के अधभुने दाने को संस्कृत में 'होलक' तथा हिन्दी में 'होला' कहा जाता है। इन्हीं होलों को होली की आग में भून कर प्रसाद रूप में खाने का विधान है।

होली, प्रभु को नई फसल के प्रसाद के अर्पण का त्यौहार है।

होली के विविध रूपों की बात करें, तो यह त्यौहार अनेक विचित्रताएं लिए हुए दिखता है। जहां इस त्यौहार की शुरूआत में होलिका दहन (यानि नव संस्येष्टी यज्ञ) के द्वारा अग्नि को सभी कुछ समर्पण कर; इदन्नमम का भाव जाग्रत होता है तो वहीं; इसके समापन में दुश्मन को भी गले लगा लेने का भाव है।

जिस प्रकार अग्नि हर कूड़ा-करकट व गंदगी को स्वाह कर वातावरण में ऊष्मा व ताजगी भर देती है; उसी प्रकार ध्यान यज्ञ में जन्म जन्मान्त्र के सभी संस्कार (पाप कर्म), जलकर स्वाह हो जाते हैं और उसी प्रकार होली का त्यौहार आपसी मनमुटाव व राग द्वेष भुला कर एक रंग करने में सहायक होता है।

अनेक शत्रु भी इस दिन गले लग कर 'बुरा न मानो होली है' का जयघोष करते हैं। यह त्यौहार रंग व उल्लास के साथ प्रेम और भाईचारे का संदेश देता है। होली के साथ जुड़ी हिरण्य कश्यप व प्रहलाद की कहानी में

हिरण्य कश्यप की बहन होलिका यानि अग्नि है। वह सिर्फ अशुभ (अहं) को जला सकती है। शुद्ध (भक्त) तो उसमें निखर जाता है।

यही कारण था कि आग की गोद में बैठा प्रहलाद अनजला बच गया।

पहले अपने मन का कचरा तथा बुरे विचार जलाओ
और उसके बाद प्रेम रंग की बरसात करो - यही है होली का मूल मंत्र।

संसार; भगवान् की परछाई

—डॉ० बलदेव राज नाशा

ध्यान के लिए एकान्त में आंखें बन्द करके, निष्क्रिय होकर, चुपचाप बैठना है। किसी प्रकार की कोशिश नहीं करनी है। इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक बैठने से हमारा मन अपने आप अन्दर प्रभु के आनन्द सागर में चला जाता है।

मैं सीधा उस भगवान के आनन्द सागर में डूब जाता हूं।

मनुष्य को भगवान ने यह स्वतन्त्रता दे रखी है कि वह चाहे तो संसार के कामों में उलझ कर अपना पतन कर ले। दुनिया की अधिक से अधिक वस्तुओं को इकट्ठा करके दु:खी हो जाए; और यदि चाहे तो

अन्तर्मुखी होकर भगवान की शक्तियों को प्राप्त कर अपना उत्थान कर ले। सुख, शान्ति, आनन्द और मौज प्राप्त करले।

मुझे भी कई बार बहुत जरूरी कामों को छोड़कर ध्यान के लिए बैठने पर बहुत डर लगता था। परन्तु जिद करके आत्म विश्वास से बैठ ही जाता हूं। इससे आज तक तो 'होनी की शक्ति' के कारण भगवान की कृपा से सभी काम अच्छे; और अच्छे ही हो गए हैं।

जो गुर दे; वह गुरु

हमारे साथ रहने वाला कोई व्यक्ति भली बात कहता है; उसे समझ कर अपने जीवन में अपनाने से यदि वह बात हमारे हित में होती है; तो वह व्यक्ति हमारा गुरु हो गया। भगवान दत्तोत्रय ने अपने 24 गुरु की बात गलत होने पर भी, उसका समर्थन किया।

किसी भी बात को भगवान द्वारा दी गई बुद्धि और विवेक द्वारा अवश्य परखना चाहिए।

संसार भगवान की परछाई है। ध्यान साधना द्वारा भगवान को पाकर पूरा संसार ही अपना हो जाता है। गलती से, भगवान को छोड़कर जो परछाई (उसकी माया); को पकड़ने की कोशिश करता है, उसके लिए कहा है;

दुविधा में दोनों गए; माया मिली न राम।

मैं स्वयं तो अब तन-मन-धन, यश, वैभव आदि से खूब निहाल हूं। इसलिए तो दूसरों को सुखी बनाने में जुटा रहता हूं। मुझे दूसरों को ध्यान साधना सिखाने की हर समय सनक सवार रहती है। कोई माने या न माने, मैं स्वयं तो अपने कल्याण के लिए अधिक से अधिक समय ध्यान के लिए बैठता हूं। भगवान से प्रार्थना है कि दूसरे लोग भी साधना करके मेरी तरह आनन्द प्राप्त करें। ध्यान का अभ्यास इतना सरल है कि संसार के हर वर्ग और स्तर का व्यक्ति इसे बिना प्रयास कर सकता है।

बहुत सरल यह साधना, साध सके तो साध।
प्रभु सम्मुख कर मेट दे। कोटि जन्म अपराध॥

जो कर कर के ना पा सका। वह न करके पा लिया॥
जो श्रम से न पा सका। वह विश्राम से पा लिया॥

जगह देख लो तुम एकान्त। शोर नहीं हो, बिल्कुल शान्त॥
आंखें मूंद बैठो चुपचाप। होने दो जो हो अपने आप॥
ध्यान नहीं करना है तुमको। मात्र बैठना ही है तुमको॥
ध्यान लगेगा अपने आप। तुम्हें बैठना है चुपचाप॥
अब कर दो मन को आजाद। होने लगे सब अपने आप॥
कब भागा अरू कहां भगा? बस समझो यह ध्यान लगा॥
जब आए तुमको यह याद। भटक गया था मन आजाद।
समझो ध्यान गया अब टूट। पुन: करो अब मन की छूट॥
सुबह-शाम का यह अभ्यास। करवा देगा प्रभु आभास॥

ध्यान मिटाता है; आंतरिक मैल

जो साधक ध्यान का रास्ता अपना लेते हैं; वे ध्यान के अभ्यास द्वारा संस्कारों का घनापन कम करने में सफल हो जाते हैं। बाहर की क्रियाएं यदि वही रहें और हम उनमें कोई बदलाव न लावें; तो भी मात्र ध्यान के अभ्यास से हमारे अन्दर के संस्कारों का घनापन कम हो सकता है।

संस्कार या बाहर की क्रियाओं का अन्दर की दुनियां में पड़ी छाप;

अन्दर की दुनियां का मैल है। यही अन्दर के दु:खों का कारण है।

हमारे शरीर की थकावट केवल क्रियाओं के समय पैदा होती है। बाहर की क्रियाओं की छाप; शरीर के आन्तरिक हिस्से की थकावट कही जाती है। यह थकावट केवल आराम से निकलती है; किसी दूसरे तरीके से नहीं निकाली जा सकती। कारण यह है कि, गहरे आराम से आत्मसत्ता उभरती है और मात्र बलवान आत्मसत्ता ही इस थकावट को निकाल सकती है।

मोह; केवल इन्द्रीय जगत की उन क्रियाओं, शक्तियों और वस्तुओं से उत्पन्न होता है; जो मन को अच्छी लगती हैं और सुखदायी प्रतीत होती हैं। इस सुख का मोह; मन को बहिर्मुखी बनाने लगता है।

ज्यों-ज्यों सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मसत्ता; मन में पिरोती है, मन में आत्म सुख उभरने लगता है। यह आत्मसुख मन को अन्तर्मुखी होने में मदद करता है। इस तरह से मन में एक ही समय में दो तरह के सुख रहने लगते हैं:

(1) **एक जो मन को इन्द्रीयसुख के जगत में ले जाने में प्रयत्नशील हैं।**

(2) **दूसरा वह सुख; जो मन को धीरे-धीरे आत्मसुख के भण्डार की ओर मोड़ने में प्रयत्नशील है।**

इन्द्रीय सुख की एक बहुत बड़ी कमजोरी है कि; वह शुरू होती है तो खत्म भी होती है; जैसे स्वादिष्ट भोजन केवल थोड़ी देर ही किया जा सकता है, नशे का सुख नशा उतरने पर अवश्य समाप्त होगा, खेल का सुख खेल खत्म होने पर अवश्य खत्म होगा। लेकिन आत्मसुख की खूबी यह है कि वह मन में ऐसे पिरोयी है, जैसे पानी में चीनी घुलती है। जब पानी में चीनी घुल जाती है; तब पूरे पानी में एक मिठास बढ़ जाती है। बिल्कुल इसी तरह ध्यान के अभ्यास का समय ज्यों-ज्यों बढ़ता है; त्यों-त्यों मन में पिरोया हुआ आत्मसुख बढ़ता है। ❑

ध्यान; हमारा स्वभाव है

—श्रीमती गुंजन गोयल (094665-15724)

जा पर कृपा, राम की होई।
ता पर कृपा, करे सब कोई॥

परमात्मा; माता पिता के माध्यम से, बच्चे को इस जगत में भेजता है। बच्चा अपने

प्रभु से जुड़ा जुड़ा, इस नश्वर संसार में आता है।

प्रत्येक पल वो अपने परमात्मा में ही लीन था।

वह बहुत कलपता और रोता बिलखता है – जब वो परमात्मा से अलग होकर इस संसार में आता है। परमात्मा से यह वायदा करता है।

हे प्रभु! मैं तुम्हें हमेशा याद रखूंगा। आप भी मुझे ना भुलाना।
मेरा साथ कभी न छोड़ना।

लेकिन होता है; इसके विपरीत। वह जैसे जैसे बड़ा होता है – सबसे पहले परमात्मा को भूल जाता है। उसे अपने किये वायदे की कोई स्मृति नहीं रहती। वह इस नश्वर संसार में लिपायमान हो जाता है। दुनिया के आकर्षणों में फंस कर अपने सब वायदे तोड़ता है।

परमात्मा; कभी उसका साथ नहीं छोड़ता।
चाहे वो कितना भी बेवफा क्यों न हो जाए?

हम उसी परमात्मा को खोजने, इधर उधर भटकते हैं। जो परमात्मा हमारे हृदय द्वार पर बैठा है – उसको भीतर खोजने की बजाय; हम बाहर खोजने निकल पड़ते हैं।

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढ़े बन मांही।
ऐसे घट घट में राम हैं, दुनियां देखे नांही॥

जिसका अन्जाम यह होता है कि;

हम दौड़ते चले जाते हैं, लेकिन हमारे हाथ खाली ही रह जाते हैं। अन्त समय खाली हाथ हम इस दुनियां से विदा ले लेते हैं। परमात्मा खोजने से नहीं मिलता। वह तो उसमें ही; खो जाने से मिलता है – जैसे नदी अपना अस्तित्व भूलकर सागर में, सागर ही हो जाती है; खुशबू फूल में रमी है और किरणें सूर्य में समाहित हैं। **जब हम खुद में, (उस परमात्मा में) इतना डूब जाएं बस उसी पल, हम उसके हो जाऐंगे; और वो हमारा।** सब कुछ भूल जाएं; और याद-सिर्फ उस विराट की हो, हमारे भीतर। शराबी बाहरी मय पीकर अपनी सुध बुध खो बैठता है। जबकि

उस परमात्मा की मय में तो इतना आनन्द है कि, हम सिर्फ आनन्द की ही अनुभूति करते हैं। ध्यान हमें करना नहीं है - यह तो हमारा स्वभाव है। जो हम भूल गये - इस संसार के आकर्षण में फंसकर। बस हमें अपने स्वभाव को याद रखना है और उस परमपिता परमात्मा की खोज में अपने हृदय द्वार तक पहुंचकर उसे प्राप्त कर लेना है। **तेरे ध्यान की बहती धारा में खो जायें प्रभु! हम तुझमें। जैसे नदिया सागर में; और खुशबू फूल में॥**

(1936-2009)

जीव का संसार

✍ डॉ० शम्भूनाथ

समस्त जीवों के पास तीन संसार हैं।

इन्द्रिय जगत, भावों की दुनियां और भावों से परे की दुनिया।

इन तीनों संसारों को महसूस करने की शक्ति; मात्र मन में है। शास्त्र तो यह कहता है कि; मन जीव नहीं है। मन चौरासी लाख जड़ों में से; एक जड़ है।

भावों से परे का संसार ही; ब्रह्म है।

सिवा ब्रह्म के इस क्षेत्र में कुछ भी नहीं है। कहने का अर्थ यह है कि इसका कोई आकार नहीं है। न गुण है, न भाव है। भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) होने के कारण हम इसे; ब्रह्म तत्व का सागर कहते हैं।

ब्रह्म ने स्वयं अपने को अनन्त रूपों और गुणों में प्रकट करने के लिये, चौरासी लाख जड़ों की स्थापना की; और अलग अलग जड़ों में अपने आपको प्रवेश कर, अलग अलग आस्तिवों को जन्म दिया। मन एक जड़ है।

मन में जब भी ब्रह्म की शक्ति पिरोती है; तब सत्-चित्-आनन्द स्वयं मन के अनुभव में आते हैं। जिस मन में सत्-चित्-आनन्द उभर आते हैं; वह मन जीव

कहलाता है। इस तरह समझना आसान है कि; मन स्वयं जीव नहीं है। वह मन; जो जड़ है - जीव नहीं है। इसलिए अनुभव में आना असंभव है। ऐसा मन मात्र दर्शन शास्त्र में है। अनुभव शक्ति; ब्रह्म तत्व पिरोने के बाद प्रकट हुई।

इसलिए चित को; ईश्वर का गुण माना गया है।

अलग अलग जड़ों ने, अलग अलग अस्तित्वों का रूप ब्रह्म तत्व पिरोने के बाद ही धारण किया। इसलिए अस्तित्वों को धारण कराने वाले गुण; सत् को भी ब्रह्म तत्व का गुण बताया गया।

मन के सारे अनुभवों में सुख और दुःख भी हैं।

मन जब अपने में रहता है, इन्द्रिय जगत में नहीं रहता; तब भी एक विशेष सुख का अनुभव करता है। या यह कहें कि; मन कुल छः तरह के सुखों को अनुभव करता है। पांच सुखों को वह अलग अलग इन्द्रियों का सुख कहता है। परन्तु एक सुख ऐसा अनुभव करता है - जिसका संबंध किसी इन्द्रिय से नहीं होता।

यही सुख 'आनन्द या ब्रह्म सुख', के नाम से जाना जाता है।

इस तरह ब्रह्म को सच्चिदानन्द बताया गया।

सत् का अर्थ है - जो है। भावों से परे जगत - ब्रह्म तत्व का सागर है; और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। कहने का अर्थ है कि सब कुछ ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न हुआ। जैसा ऊपर बताया गया, अपने को अनन्त रूपों और गुणों में प्रकट करने के लिए चौरासी लाख जड़ों की स्थापना हुई। इन जड़ों में; मन में जब ब्रह्म तत्व पिरोया, तो जीवात्मा उत्पन्न हुआ। इसलिए सन्त तुलसीदास ने कहा -

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।

सत् चेतन धन आनन्द राशी॥

जड़ मन में; ईश्वर अंश पिरोया तो जीव उत्पन्न हुआ। जीव उत्पन्न होने के साथ साथ, जीव का संसार तो उत्पन्न होना ही था।

जीव परमात्मा का अंश है, अर्थात् पुत्र समान है।

परमात्मा की सारी दैवी शक्तियां ईश्वर पुत्र को अपने अपने सुख प्रदान कर सकें; इस कारण शास्त्र कहता है कि 33 करोड़ (अनगिनत) देवताओं की स्थापना हुई।

जीवन में हर मनुष्य दो तरह की शक्तियां अनुभव करता है :- अपनी-अपनी बुद्धि की शक्तियां और होनी की शक्तियां। हर मनुष्य के अनुभव में यह है कि; होनी पर उसका कोई जोर नहीं। उसका जोर तो केवल; अपनी बुद्धि की शक्ति पर है। इस तरह समाज होनी की शक्तियों को ईश्वर की शक्ति मानने लगा; और कोई भी मन इस शक्ति से अछूता रह ही नहीं सकता।

समझने के लिए किसी की बुद्धि उसे समझाने में असमर्थ है कि वह किसी विशेष व्यक्ति का ही पुत्र क्यों है? इन मनुष्यों का आकार एक ही तरह का होने पर भी वह अलग-अलग कैसे दिखता है?

जब बच्चा कुछ करने लायक नहीं रहता; तब उसका हर काम दूसरे करते हैं। परन्तु ज्यों ज्यों उसकी बुद्धि का विकास होता है - उसके जीवन में विश्राम की कमी होती है और मेहनत बढ़ती है। ज्यों ज्यों जीवन में मेहनत बढ़ती है - इन्द्रिय जगत के सुख साधन बढ़ते हैं, परन्तु मन में आनन्द की कमी भी बढ़ती है। भ० गीता (18.66) में श्रीकृष्ण इस रहस्य का उत्तर निकला।

सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणम् ब्रज।
अहम् त्वा पापेत्यो मोक्षयिष्यामि, मा शुचः॥

तज धर्म सारे, एक मेरी ही शरण को प्राप्त हो।
मैं मुक्त पापों से करूंगा, तू न चिन्ता-व्याप्त हो॥

Surrendering all your duties to Me totally,
Take thou refuge in Me only,
I shall absolve you of sins and sinful thought,
I am thy protector, worry you not.

सब धर्मो को छोड़कर, मेरी शरण में आय।
कष्ट सब, उस के हरूँ, आवा गमन मिटाय॥
मुझ को सुमिरे भक्ति से, प्रेम सहित चित्त लाय।
मेरे को ही जान कर, मेरा रूप हो जाय॥

अर्थात् : शरीर और बुद्धि के सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों एवं आसक्ति, अहंत्ता, ममता इत्यादि त्याग कर तू केवल एक मुझ सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की शरण

में आ। मैं तुझे सभी पापों से मुक्त (बुरे संस्कारों से रिक्त) कर दूंगा। मैं तेरा रक्षक हूं। तू शोक रहित हो जा।

आंखों का काम (धर्म) है देखना। कानों का धर्म सुनना और मुख का काम बोलना है। जब हम ध्यान (Meditation) के लिए एकांत में आंखें बन्द करके, चुपचाप बैठ जाते हैं, तो सारे धर्म (काम) कुछ देर के लिए छूट जाते हैं। हमारा मन सुख की खोज में स्वभावतः अपने निवास स्थान (अन्तःकरण) में चला जाता है। अतः हम अन्दर बैठे प्रभु की शरण में चले जाते हैं। इस अभ्यास एवं प्रक्रिया से हमारे पाप धुल जाते हैं; अर्थात् संस्कार कट जाते हैं।

सब धर्मों को छोड़कर मनुष्य कृष्ण की शरण में चला जाए; का अर्थ यह है कि; पति धर्म, पत्नी धर्म, पुत्र धर्म, पिता धर्म, मातृ धर्म, जाति धर्म और समाज धर्म आदि से सम्बन्धित कर्मों को छोड़कर अपने (स्वयं) अथवा स्वः में चला जाए। क्योंकि सारे शरीरधारी जीवों के अन्दर सदा से कृष्ण (जीवात्मा) रहे हैं, रहते हैं और सदा रहेंगे।

गीता के इस श्लोक के अर्थ की सत्यता का प्रमाण यही है कि; हर नवजात शिशु उपरोक्त बताए गए धर्मों संबंधित कर्मों से हट कर अधिकतर अपने में ही मस्त रहता है।

फलस्वरूप जैसा ऊपर श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकला - श्रीकृष्ण हर नवजात शिशु का हर काम 'होनी की शक्ति' के माध्यम से किसी न किसी के द्वारा करा ही देते हैं। भले ही जिसके द्वारा कराते हैं - मायावश वह यह समझता हो कि; बच्चे का काम तो मुझे करना ही पड़ता है।

होनी की शक्ति; सत् (ब्रह्म) की शक्ति है।

शरीर के अन्दर का भाग दो क्षेत्रों में बंटा है; भावों के क्षेत्र और भावों से परे का क्षेत्र। भावों से परे के क्षेत्र में कुछ भी नहीं है; और इसी को ब्रह्म कहते हैं।

ब्रह्म से ही पूरी सृष्टि निकली है।

प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्म को यह सृष्टि बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? हम ऊपर देख चुके हैं कि परमात्मा के अंश अर्थात् पुत्र के रूप में जीव का अस्तित्व उत्पन्न हुआ। बाहर के क्षेत्र में हम देखते हैं कि कदाचित् करोड़ों में एक

भी पिता, ऐसा नहीं मिलता – जो अपनी शक्ति के अनुसार अपने पुत्रों का अच्छे से अच्छा रख-रखाव न करे।

'यथे पिंडे, तथे ब्रह्मांडे'

जो शरीर के अन्दर है, वही शरीर के बाहर है। शरीर के अन्दर परमात्मा है; जो सर्व शक्तिशाली हैं। उसकी क्षमता असीम है। अतः उसने पुत्र समान जीवों के लिए, जैसा लेखक ऊपर बता चुका है – देवताओं की स्थापना हुई और ये देवता जीव की रक्षा के लिए वहीं पर स्थापित किए गए, जहां जीव स्वयं प्रकट हुआ। हम ऊपर देख चुके हैं कि; जीव शरीर के मन में ब्रह्म शक्ति पिरोने से प्रकट हुआ।

अर्थात् मनुष्य का मन ही जीव है। मनुष्य के मन में हर समय विचार उठते रहते हैं। यह हर मनुष्य की अनुभूति है।

इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि समस्त देवताओं और जीवों के रहने का स्थान भावों का क्षेत्र है। साधकगण इसे पराजगत के नाम से परिचित हैं।

समाज में सभी की अनुभूति है कि बच्चों को खिलौनों द्वारा बहलाते हैं। यदि शरीर के बाहर इन्द्रिय जगत में ऐसा है, तो शरीर के अन्दर भी ऐसा ही होना चाहिए।

खिलौने का अर्थ है, झूठा सुख।

जब बच्चा बड़ा होता है, हम उसे जीवन के सुखों से परिचित कराने का प्रयास करते हैं और खिलौनों के सुख से बहलाना बन्द कर देते हैं।

परमात्मा का सुख या आनन्द ही सच्चा सुख है।

सारे शास्त्रों में बताया गया है कि; इन्द्रिय सुख तो मायावी है, अर्थात् दुखदाई है। परमात्मा ने अपने बच्चों को बहलाने के लिए एक दूसरा संसार-इन्द्रिय जगत बनाया।

इस तरह मन के पास दो घर हो गए : अपना घर-पराजगत; और मायावी सुख का घर-इन्द्रिय जगत।

पृथ्वी लोक पर अधिकतर आठ वर्ष से नीचे के बच्चों को मात्र खिलौनों से बहलाया जाता है। ज्यों-ज्यों बच्चे की आयु बढ़ती है, वह धीरे-धीरे खिलौनों से

दूर होने लगता है और इन्द्रिय जगत के सुखों की ओर मुड़ने लगता है। **प्रश्न उठता है कि**

परमात्मा ने किन स्तर के जीवों का मन बहलाने के लिए इंद्रिय जगत की स्थापना की?

आन्तरिक जगत; सत्-चित्-आनन्द का क्षेत्र है। चित् का अर्थ है; चेतना। चेतना में ज्ञान उपजता है। पूर्ण चेतना में पूर्ण ज्ञान है। आंशिक चेतना में आंशिक ज्ञान है। सन्त तुलसी दास ने लिखा है –

बड़े भाग मानुष तन पावा।

सुर दुर्लभ सद ग्रन्थहिं गावा॥

हम मनुष्य, मनुष्यों के विषय में जानते हैं कि; कम से कम कलयुग में अधिकतर मनुष्य, तीन चेतनाओं में ही रहते हैं : निद्रा की चेतना, स्वप्न की चेतना और इन्द्रिय जगत की चेतना। अधिकतर व्यक्तियों का जीवन इन तीन चेतनाओं के चक्र में बीतता है। ऐसे व्यक्तियों में आन्तरिक सुख या कहें; ब्रह्म का सुख अनुभव करने की शक्ति नहीं होती। अतः उनके जीवन का आधार मात्र इन्द्रिय सुख होता है। क्योंकि यह सत्य है कि

जीवन का आधार मात्र सुख है, दुःख नहीं।

अतः तीन चेतनाओं के चक्र में जीवन बिताने वाले सभी व्यक्ति परमात्मा की दृष्टि में उन बालकों की भांति हैं, जो झूठे सुख पर अपना जीवन बिताते हैं। जो जीव; मनुष्य का शरीर ही नहीं प्राप्त कर पाए हैं, वे इन तीन चक्रों में जीवन बिताने वाले मनुष्यों से भी निम्न स्तर के बालक हैं।

भ० गीता (7.3) में स्वयं कृष्ण ने अपने मुखारविंद से कहा है –

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

हजारों मनुष्यों में से कोई एक मेरी सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है। प्रत्यन करने वालों में भी कोई एक मुझे तत्व से जानता है।

Of thousands, rare struggle to Me apprise,

Of these, rare one succeeds to realise.

अर्थात् पूर्ण चेतना विकसित करने वाले तो लाखों में कोई एक होगा। ऐसा द्वापर में श्रीकृष्ण ने कहा था। कलयुग में तो शायद करोड़ों में कोई एक मिलेगा। भले ही सत्युग में अधिकतर व्यक्ति; सत् की राह पर चलने वाला जीवन व्यतीत करते रहे होंगे। इस घोर कलयुग में केवल उस मनुष्य का जीवन मायावी जीवन के दल-दल से बाहर निकलने की अवस्था में होने लगेगा – जो इन्द्रिय जगत के कर्मों के साथ साथ आन्तरिक जगत के कर्मों में लिप्त हो जाए। अध्यात्म जगत के विद्वानों ने पूर्ण विकसित चेतना की अवस्था को सात भागों में विभाजित कर दिया। तीन चेतना में रहने वाले व्यक्ति माया के दल-दल में ग्रस्त हैं। अतः

> **चौथी चेतना के व्यक्ति ही दलदल (Ignorance) से बाहर निकलने की चेष्टा में हैं और ज्यों-ज्यों उनकी चेतना सातवीं चेतना की ओर अग्रसर होती है, त्यों-त्यों उसी अंश में उनका जीवन माया के दलदल से बाहर आ जाता है।**

हमने देखा कि जीव का जीवन तीन जगतों में फैला हुआ है। सबसे निम्न स्तर इन्द्रिय जगत का जीवन है। ऐसे व्यक्तियों के लिए ही कहा गया है कि वे मायावी दलदल में पूर्ण रूप से ग्रस्त हैं। ज्यों-ज्यों मनुष्य इन्द्रिय जगत के कर्मों के लिए उस समय, समय निकालता है, जब वह इन्द्रिय जगत की जागृति को प्राप्त रहता है। मात्र ऐसे व्यक्ति मायावी दलदल से बाहर निकलने में प्रयत्नशील हो जाते हैं और धीरे-धीरे पूर्ण विकसित चेतना की ओर अग्रसर होने लगते हैं। ऐसे मनुष्यों में आन्तरिक क्षेत्र के आस्तित्वों को अनुभव करने की शक्ति बढ़ने लगती है। ऐसे व्यक्तियों के मन में सत्-चित्-आनन्द उभरने लगता है। सत्; उनके अन्दर के रज और तम को कम करने लगता है। ब्रह्म सुख की अनुभूति; ऐसे मनुष्यों को इन्द्रिय सुखों के भोग से दूर करने लगता है; और बढ़ती हुई चेतना में जीवन सत्य का ज्ञान उभरने लगता है। इस अवस्था को प्राप्त होने के पूर्व उसका ज्ञान यह होता है कि; जीवन के समस्त ज्ञान पुस्तकों में और गुरुओं के पास रहता है। लेकिन ज्यों-ज्यों वह चेतना की पांचवीं (Cosmic), छठवीं (God), सातवीं (Union) अवस्था को प्राप्त करता है – उसे आभास होने लगता है कि उसका पिछला जीवन मायावी था और जीवन का विशुद्ध ज्ञान तो मात्र बढ़ती हुई चेतना में है।

सब कुछ करने वाला मात्र ब्रह्म है और ब्रह्म की शक्ति द्वारा ही सब कुछ होता है। ब्रह्म की शक्ति ब्रह्म तत्व में पिरोई रहती है। दूसरे शब्दों में;

> **मन वह बैंक है, जिसमें आत्मधन का संचय होता है; और मन ही समस्त देवी-देवताओं को आत्मधन इन्द्रिय जगत के रख-रखाव के लिए देता है। मनुष्य इस सत्य से परिचित है कि मन क्षणों में कहीं से कहीं जाने में सक्षम है। मन एक समय में किसी एक ही ओर खिंचता है; और जिस समय जिस ओर खिंचता है, उस क्षेत्र के रख-रखाव के लिए सम्बन्धित देवता को संचित ब्रह्म की शक्ति प्रदान कर देता है।**

समझाने के लिए हम कुछ उदाहरणों की ओर अपना ध्यान ले जाएं।

(1) जब हम ग्रीष्म ऋतु में प्रातःकाल ठंडी हवा के सेवन हेतु सैर करने जाते हैं तो- हमारा मन ठंडी हवा की ओर खिंच जाता है या यह कहें कि कुछ समय के लिए हमारा मन ठंडी हवा के सुख के भोग में रहता है। इन्हीं क्षणों में वायु देवता को मन में, संचित ब्रह्म की शक्ति से शक्ति प्राप्त हो जाती है।

(2) जब हमें किसी प्रकार का भय होता है, उस समय मन, भय हटाने के साधनों के क्षेत्र में रहता है और जिस अंश में ब्रह्म की शक्ति का संचय मन में होता है, उसी अंश में भय हटाने की इच्छा पूर्ति सम्बन्धित परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती है और भय हट जाता है।

इस प्रकार साधकों को आसानी से यह समझ में आ जाएगा कि हर जीव का मन अनन्त क्षेत्रों को ब्रह्म की शक्ति प्रदान करता ही रहता है।

जीवों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है।

मनुष्य अपनी इच्छानुसार जब चाहे, आन्तरिक क्षेत्र में विचरण करके अधिक से अधिक शक्ति का संचय करके इन्द्रिय जगत और पराजगत के रख-रखाव हेतु देवताओं को शक्ति प्रदान करके, अपना योगदान दे सकता है। ये कर्म सर्वश्रेष्ठ हैं और ऐसे कर्मों का जीवन जीने वाले व्यक्ति; ईश्वर की असीम कृपा प्राप्त करने के पात्र बन जाते हैं। संत तुलसीदास ने लिखा है-

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।

जो जस करई सो तस फल चाखा ॥

अर्थात् ऊंची से ऊंची चेतना में कर्म करने वाले व्यक्ति ही जीवन के समस्त सुखों के भोग के अधिकारी हो जाते हैं। इसलिए यह भी प्रसिद्ध है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। अपना भाग्य बनाने की कला यह है कि; मनुष्य ऊंची से ऊंची चेतना में आन्तरिक क्षेत्र में विचरण करके, आराम के क्षेत्रों में कर्म करने में सिद्ध हो जाए। जिससे उसका जीवन प्रयासहीनता की ओर अग्रसर होकर कम से कम प्रयास द्वारा ब्रह्मांड की हर वस्तु पाने में सक्षम होने लगे। ❑

युक्ति से मुक्ति

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (099918-46415)

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए Meditation जरूरी है। शरीर जिस तरीके से ठीक रहे; चाहे वह Morning Walk हो, वा योगा, या Natural Pathy। या अन्य कोई भी तरीका; जैसे अपना खान पान सही, थोड़ी दिनचर्या में सेवा की भावना रखना और करना; ये सब Meditation में आती हैं।

शरीर स्वस्थ होगा तो ही मन स्वस्थ रहेगा। इसी तरह मन को स्वस्थ रखने के लिए Meditation जरूरी है। शरीर स्वस्थ होगा; तो ही हम आराम से बैठकर ध् यान कर सकते हैं। और जीवात्मा रूपी धन को मजबूत व स्वस्थ बना सकते हैं। ध्यान के लिए स्वास्थ्य की जरूरत है।

अब प्रश्न उठा कि एक ही सधे सब सधे कहते हैं; तो फिर हमें दो बातें करने की क्या जरूरत? वह ठीक है कि एक साधने पर सब ठीक हो जाता है। परन्तु यह स्थिति तब की है; जब हम 'एक' में बहुत परिपक्व हो जाते हैं। तब कोई दूसरा काम नहीं करना पड़ता। जैसे बच्चा पढ़ता है तो पहले कई Subject पढ़ने पड़ते हैं। जब 12th में उत्तीर्ण हो जाता है; तो उसको एक रास्ता चुनना होता है कि मैंने डॉक्टरी करनी है या इन्जीनियरिंग करनी है? तो उसको बाकी Subjects की तरफ ध्यान नहीं देना पड़ता। जब और आगे जाता है; जैसे :- M.D. करता है। उसका काम और कम हो जाता है। यह सब तो संसार में पेट भरने के लिए पापड़ बेले। इसी तरह जब अध्यात्म में चलते हैं;

तो जीवात्मा और मन को, शक्तिशाली बनाने के लिए ध्यान का अभ्यास करते करते हमारे में, होनी की शक्ति (अर्थात भगवान् की शक्ति) आ जाती है।

तब हम जो चाहते हैं, वही होने लगता है। जैसे हम कई बार सुनते भी हैं और कई लोगों ने देखा भी है कि वहां एक बाबा जी आए हैं, जो दु:खों को दूर कर देते हैं, या जो लेना चाहे, हमें दे सकते हैं। यह सब कैसे होता है?

तब हम कहते हैं कि उन्होंने तो भगवान् को पा लिया है। और उनमें 'होनी' की शक्ति आ गई है। इसलिए दु:ख दूर कर सकते हैं। तो फिर उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं रह जाता।

मेरी सबसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है; जो आप सबको सोने जैसी काया मिली है, खाक होने से पहले ध्यान का अभ्यास बढ़ाएं और भगवान को पाएं। आत्म शक्ति को बढ़ाएं। क्योंकि हमें यह नहीं सुनना कि

जाएगा जब यहां से, कुछ भी न पास होगा।
दो गज कफन का टुकड़ा, तेरा लिबास होगा॥

हमने तो सुना है; कि

जाएगा जब यहां से, कफन तो शरीर का लिबास होगा।
पर हमारी जीवात्मा का तो, भगवद् शक्ति से मालामाल होगा॥

ध्यान करना क्या है? बस दिन में दो-तीन बार 30-30 मिनट आंख बन्द करके, एक बार भगवान् का नाम सोचकर, चुपचाप एकान्त में बैठना है। बस ध्यान अपने आप आरम्भ हो जाएगा।

आपका काम बैठते ही खत्म। भगवान का काम शुरू। ❑

ध्यान द्वारा इच्छापूर्ति

—श्री महेन्द्र सिंह जांगड़ा (094676-07109)

संसार में सभी प्राणी उन्नति और विकास की ओर प्रयत्नशील हैं। उनमें से मनुष्य अधिक प्रयत्नशील हैं क्योंकि उनको सबसे अधिक ज्ञान है। जो मनुष्य सफल हो

जाते हैं, उन्हें बहुत खुशी और आनन्द आता है। भविष्य में वे काम करने की भूमिका बनाते हैं। मगर कुछ मनुष्य पूरी ताकत लगाकर भी सफल नहीं होते। उनको बहुत कष्ट होता है और दुर्बलता भी आती है। वे थककर अपने आपको अयोग्य समझते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि जीवन संघर्ष पूर्ण है।

परन्तु मनोवैज्ञानिकों के द्वारा पता चला है कि हम अपनी शक्ति का बहुत कम अंश प्रयोग में लाते हैं। इसलिए हमारे काम में सफलता नहीं मिलती।

यदि हमें इस बात का पता चल जाए कि यह शक्ति कहां है?
तो हम भी शक्ति प्राप्त करके सफल हो सकते हैं।

इस मन की शक्ति का भण्डार कहीं बाहर नहीं है; यह तुम्हारे अन्दर ही है। यह बहुत सरल, सहज और मन की स्वाभाविक वैज्ञानिक परिक्रिया है। वेद और विज्ञान से प्रमाणित है। जहां से हमारे विचार उठते हैं – वहां पर ब्रह्म की शक्ति है। वहीं पर ब्रह्म-कुंड भी है।

हम संसार में जो भी क्रिया करते हैं, उसकी प्रतिक्रिया हमारे चित पर जमा हो जाती है। जब ध्यान योग में बैठते हैं तो दो तरह के विचार आते हैं – एक सकारात्मक, दूसरे नकारात्मक। पहले हमारी शक्ति नकारात्मक विचारों में लगती है और खत्म भी हो जाती है, विचार पूरे नहीं होते। धीरे धीरे ध्यान योग के द्वारा बुरे विचार ब्रह्म कुंड में भस्म हो जाते हैं; फिर शक्ति सकारात्मक विचारों में लगती है और हमारे काम में सफलता मिलती है।

हमारी इच्छा परमात्मा की इच्छा बन जाती है।

प्रकृति के नियम हमारे अनुकूल काम करते हैं। भूत-भविष्य की चिन्ता खत्म हो जाती है। हम वर्तमान में जीने लग जाते है।

श्री कृष्ण ने (भ० गीता 2.48 से 2.50 में) कहा है –

योग्यस्थ कुरु कर्माणि एवं कर्म कौशलम्।

यानी योग के बाद काम करें। फिर आप को सफलता मिल जाएगी – चाहे आप कुछ भी काम करें। हमारी सभी की इच्छा होती है कि मैं सब से अधिक बुद्धिमान

बनूं, सबसे अधिक शक्तिशाली बनूं और सबसे अधिक आनन्दमय रहूं। ये तीनों शक्तियां, ध्यान योग के द्वारा मिलती हैं। संक्षेप में कहें तो आप मन की चिन्ता, बुद्धि की परेशानी तथा शरीर के रोग; स्वयमेव कम होते जाएंगे।

जो हम ब्रह्माण्ड में देख रहे हैं; वही हमारे अन्दर भी है।

वह ध्यान योग के द्वारा बाहर आता दिखाई देगा। धीरे धीरे विचार खत्म होते जाएंगे और आप शक्तिशाली, बुद्धिमान और आनन्दमय रहने लगेंगे। ❏

आन्तरिक क्षेत्र में मन का विचरण ही; ध्यान है

—प्रस्तुति : श्री सतनारायण शर्मा (09416164702)

कर्म ही हमें बताता है कि; हमारा मन कहां है?

जब मन प्रयासपूर्ण कर्मों में रहता है; उस समय वह बुद्धि और इन्द्रियों के साथ रहता है। अत: हम कहते हैं कि मन बाहर है। ऐसे कर्मों से हमारा 'मैं' हमेशा जुड़ा रहता है।

जब मन इन्द्रियों की मदद नहीं लेता। और मात्र विचारों के क्षेत्र में विचरण करता है; जैसे जब साधक एकान्त में किसी कुचालक (Bad conduct of electricity) पर आंख बंद करके अन्धेरे में बैठ जाता है – उस समय उसका मन केवल विचारों की दुनियां में रहता है; तब दो संभावनाएं रहती है।

कभी उसके विचार उसके मैं से जुड़े होते हैं और

कभी उसके विचार मैं से जुड़े नहीं होते।

जिस समय उसके विचार 'मैं' से जुड़े होते हैं – मन आन्तरिक जगत और बाहर के जगत के बार्डर (Border) पर रहता है।

परन्तु जब उसके विचार उसके 'मैं' से अलग हो जाते हैं –

उस समय उसका मन आन्तरिक क्षेत्र में विचरण करता है और यही ध्यान (Meditation) है।

इसलिए महान संत कबीर ने भी समझाया कि –

जब मैं था तब हरि नहीं।
जब हरि था तब मैं नाहीं।

नदी जब समुद्र में मिल जाती है; तब समुद्र में नदी को ढूंढना असंभव होता है। इसी प्रकार से ध्यान का अर्थ है – 'मैं' का हरि में योग।

यदि मैं नदी के समान है; तो हरि समुद्र के समान है। इसीलिए जितने समय के लिए दोनों का मिलन होता है; उतने समय तक 'मैं' को ढूंढना असंभव रहता है।

ध्यान के लिए हमें क्या करना है?

हम नित्य सुषुप्ति की अवस्था में जाते हैं, लेकिन हमें निद्रा का स्थान और बिस्तर ढूंढना पड़ता है। इसी तरह से ध्यान तो अपने आप लग जाएगा। लेकिन ध्यान के लिए हमें एकान्त वातावरण ढूंढना चाहिए। एकान्त में अंधेरा करके किसी कुचालक पर आंख बंद करके बैठ जाना है। मात्र एक बार अपने इष्टदेव को मन में स्मरण करें। फिर मन को स्वतंत्र (Relax) छोड़ दें। मन अपने आप कभी 'मैं' से जुड़ेगा और कभी फिसल कर आन्तरिक जगत में विचरण करने लगेगा।

ध्यान रहे कि मन की गतिशीलता का चिह्न; विचारों का उठना है।

इसलिए आन्तरिक विचरण के समय जो विचार उठते हैं – उन्हें रोकने की चेष्टा न करें। करने का अर्थ है – मैं से जुड़ना। और ध्यान का अर्थ है – 'मैं' से अलग हो जाना।

'मैं' से अलग रहने वाले विचार; मात्र निकलते हुए विचार होते हैं।

ये निकलते हुए विचार आन्तरिक जगत की सफाई से संबंध रखते हैं। यदि किसी बर्तन में कुछ तरल पदार्थ भर दी जाए तो; जितनी जगह वस्तु लेती है उतनी हवा बर्तन से बाहर निकल जाती है। यदि तरल पदार्थ बर्तन से निकाल ली जाए तो हवा अपने आप उस बर्तन में भर जाती है। बिल्कुल इसी प्रकार से;

आन्तरिक जगत के कर्मों द्वारा जितनी ही सफाई मन में होती है – उसी अनुपात में ब्रह्म की शक्ति मन में पिरो जाती है।

यहां पर बर्तन की तुलना, मन से की गई है। तरल पदार्थ की तुलना निकलते हुए विचारों से की गई है और हवा की तुलना ब्रह्म की शक्ति से की गई है। अत:

ध्यान वह कर्म है – जो हमारे मन पर पड़े हुए इन्द्रिय जगत के

विचारों को बाहर निकाल कर; मन में ब्रह्म की शक्ति पिरोने में मदद करता है।

समाज में एक कहावत प्रचलित है कि; सच्चे मन से ईश्वर को पुकारें, तो ईश्वर हमारी अवश्य सुनता है। आज के समाज में इस कहावत का अर्थ यही निकालते हैं कि; यदि मन में किसी तरह की बेईमानी नहीं है तो ईश्वर आपकी अवश्य सुनेगा। परन्तु यह साधारण मनुष्य के जीवन की अनुभूति नहीं है। लोगों के मन में यह उठने लगता है कि यह कहावत सतयुग के मनुष्यों के लिए कही गई होगी। कलयुग के मनुष्यों के जीवन में तो ऐसा नहीं होता। सत्य यह है कि

सच्चे मन का अर्थ है कि वह मन, जो इन्द्रिय जगत के कर्मों से प्रभावित न हो।

ऐसे प्रभाव मन में एक मिलावट हैं और मन सच्चा नहीं रहता। ऊपर हमने देखा कि; ध्यान कर्म से आन्तरिक जगत पर इन्द्रिय जगत के कर्मों का प्रभाव निकाल कर हम अपने मन में हरि का प्रसाद पिरोने में सफल होते हैं। इस हरि के प्रसाद से तर बतर मन ही सच्चा मन है। इसी विषय में सन्त तुलसी दास ने कहा है –

जो इच्छा करिहौं मन माहीं।
हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

सृष्टि के समस्त कर्मों का विभाजन दो तरह के कर्मों में हो जाता है : प्रयासपूर्ण कर्म और प्रयासहीन कर्म। प्रयासपूर्ण कर्म बुद्धि और इन्द्रियों के माध्यम से होते हैं और

प्रयासहीन कर्म; मन का विचरण आन्तरिक जगत में

या यह कहें कि बुद्धि और इन्द्रिय से परे होता है। यह संसार में 'मैं' से भी परे होता है। ऐसे कर्मों को आराम का कर्म भी कहते हैं। प्रयासपूर्ण कर्म, मेहनत के कर्म भी कहे जाते हैं। इस तरह यह समझना आसान है कि

ध्यान कर्म तो मात्र आराम के कर्म हैं।

समाज इस सत्य के प्रति जागरूक नहीं है कि मात्र आराम के माध्यम से वह अपने इन्द्रिय जगत की क्रियाओं में दिव्य शक्तियों का योग प्राप्त कर सकता है। आराम कर्म द्वारा मन में ब्रह्मतत्व पिरोते हैं; और ब्रह्मतत्व पिरोने से मन उच्च स्तर की

जागृति को प्राप्त होता है।

मनुष्य जितने उच्च स्तर की जागृति में आराम होने देता है -
वह उतने ही गहरे आराम को प्राप्त हो जाता है।

अर्थात् हम जिस चेतना में, जितना गहरा आराम प्राप्त कर लेते हैं - तुलनात्मक दृष्टि से उससे भी ऊंची चेतना को प्राप्त हो जाते हैं। सारांश यह है कि

उच्च चेतना की प्राप्ति जागृत अवस्था में गहरे-से गहरे-आराम को प्राप्त करके, की जा सकती है।

समाज का साधारण मनुष्य तो मात्र सबसे निम्न चेतना; अर्थात् निद्रा की चेतना में आराम से परिचित है।

जागृत अवस्था में गहरा आराम ही गहरा ध्यान है।

इस सत्य से परिचित न होने के कारण समजा के अधिकतर लोग प्रयासपूर्ण कर्मों द्वारा ईश्वर का ध्यान करने का प्रयत्न करते हैं और जीवन में असफल रहते हैं।

मन है; आनन्द का केन्द्र

सृष्टि की सारी शक्तियां जीवन में तीन प्रकार से बंट जाती हैं; शारीरिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति और आत्मिक शक्ति। इन शक्तियों की आवश्यकता जीव को अपने अपने जीवन निर्वाह के लिए पड़ती है। जीव ही ओढ़नी के रूप में, शरीर को धारण करता है। जीव के पास शरीर होने के कारण एक शारीरिक शक्ति का भण्डार है।

मन में जब ब्रह्म तत्व पिरोते हैं; तो मन का अस्तित्व जीव को अनुभव होने लगता है।

मन में सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म तत्व पिरोने से, मन में सत-चित्-आनन्द उभर आते हैं। सत् उभरने के कारण मन का एक अस्तित्व हो जाता है; अर्थात् चित् महसूस करने की शक्ति उभर आने के कारण, जीव मन को महसूस करने लगता है। जिस अनुपात में अनुभव शक्ति उभरती है; उसी अनुपात में अलग अलग जीवों की अलग अलग चेतनाओं की अवस्था अनुभव करने योग्य हो जाती है। अलग अलग शक्ति का अर्थ है कि

सब कुछ अनुभव करने की शक्ति किसी के मन में नहीं है ।

1. कुत्ते में सूंघने की शक्ति को अनुभव करने के कारण पुलिस विभाग इसे चोर इत्यादि खोज करने के लिए प्रयोग में लाते हैं और कई जगह सफल होत हैं।

2. माता के जगारण में तारा देवी की कथा का वर्णन आता है। इसमें भक्त लोग प्रसाद के रूप में खीर तैयार करते हैं। खीर तैयार होने के पश्चात् असुर रूप में सर्प उस प्रसाद को जहरीला बनाने के लिए स्वयं उसमें प्रवेश कर जाता है। यह सारा माजरा एक छिपकली देख लेती है और इसके परिणाम का अंदाजा लगा लेती है। भक्तजन को बचाने के लिए वह अपने आपको समर्पण कर; स्वयं खीर में कूद जाती है। इस तरह से कई लोगों की जान बचाती है। भक्तजन उस छिपकली को कोसते हैं। परन्तु सर्प की वास्तविकता का पता लग जाने पर छिपकली के कार्य-कुशलता पर वे उसे सराहते हैं।

3. सुर एवं असुर में सदैव झगड़ा रहता था। एक बार देवताओं और असुरों में युद्ध के बाद आनन्द का घड़ा देवताओं के हाथ लग गया। वे सोचने लगे कि उसे कहां रखें; कि वह असुरों के हाथ ना लगने पाए? वरना राक्षस आनन्द मग्न हो जाएंगे। बहुत सोचने के बाद उन्हें एक सुरक्षित स्थान मिला-''हृदय''।

घड़े को वहां रख दिया।
वह वहां सुरक्षित क्यों है?
मनुष्य सब देखता है; परन्तु अपने हृदय में नहीं देखता।

वह सब कुछ खोजता है, कई स्थानों पर आनन्द के लिए भटकता है। परन्तु हिरण की तरह अपने भीतर की कस्तूरी को अपने भीतर नहीं खोजता।

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे मन मांही।
ऐसे घट घट में राम हैं, दुनियां देखे नाहीं॥

यह रूपक भले ही हो, किन्तु तात्पर्य यह है कि आनन्द का वह घड़ा आज भी वहां हृदय में सुरक्षित है।

यह मन ही हमारे आनन्द का केन्द्र है।

इस मन द्वारा ध्यान करने से आनन्द की अनुभूति होती है। आनन्द प्रकट होता है। श्रेय और प्रेय का मार्ग, योग और भोग का मार्ग, मन और अमन का मार्ग, बंधन

और मोक्ष का मार्ग; सदैव हर प्राणी के सामने आते हैं।

मनुष्य की स्वतंत्रता

मनुष्य की यह स्वतन्त्रता इतनी विकसित है कि वह स्वयं अपने मार्ग का चुनाव कर सकता है। यदि वह चाहे तो व्याधि, आधि और अपाधि का जीवन जी सकता है। यदि वह चाहे तो इनसे मुक्त हो सकता है। अपने कर्मों के द्वारा ही व्यक्ति अपने आपको सुख और दु:ख देता है। सामाजिक परिस्थितियां निमित हो सकती हैं। पर मूलत: सारी व्यवस्था, सुख और दुख की सारी व्यवस्था; कर्म के सिद्धान्त पर ही आधारित हैं। फिर वह कर्म हो, अकर्म हो या निषिद्ध-कर्म हो, फल भी उसी के अनुसार मिलते हैं। ❑

परमधाम का सुगम मार्ग

—प्रस्तुति : श्रीमती अनु जैन, भिवानी

परमधाम पहुंचने का सुगम मार्ग है - समभाव-समदृष्टि

अर्थात् ध्यान योग की युक्ति द्वारा अपने आप की पहचान करके; अपना जीवन रोशन करना। फिर समभाव; जो एक निगाह या एक दृष्टि देखनी होती है - बिना यत्न के उसकी प्राप्ति हो जाती है। यह है जन्म की बाजी को जीतना - यानि जन्म -मरण, रोग-सोग, खुशी-गमी, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी; (द्वैत जगत) में सम बने रहना।

अंतत: जानो कि; परमधाम चढ़े हुए हजारों सूरजों की रोशनी है। उसी की रौशनाई का प्रकाश सर्व-सर्व फैला हुआ है। वहां बिन सूरजों उजियाले के प्रभाव से, सुरत (जीवात्मा) त्रिकालदर्शी हो; अनुपम प्रसन्नता व आनन्द की अनुभूति करती है। यह सुहावनी चमक का नजारा, अत्यंत प्यारा लगता है। क्योंकि यहां जग अन्दर चमक रहा सिरजनहारा, कोई रहस्य की बात नहीं रहती।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार - परमधाम में परमेश्वर यानि कुदरत के वाली (मालिक) रहते हैं; और वही सबसे पवित्र स्थान है। यहां कोई विरला ताकतवर जीव ही पहुंच सकता है। जानो; जहां परमधाम कुदरत के वाली (भगवान) चमकते हैं और उसी से निर्वाण में जोत जगमगाती है - वहां निर्गुण में एक रूप

निगाह आते (दर्शाते) हैं; और सर्गुण में वही एक रूप हर अन्दर सुहाता है। यानि सर्वव्यापक भगवान के विराट् रूप के दर्शन हो जाते हैं।

भगवद्गीता (11.15) अर्जुन ने श्रीकृष्ण को सम्बोधित हो कर कहा;

पश्यामि देवांसतव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंधान्।

ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥

हे भगवान् कृष्ण! मैं आपके शरीर में सारे देवताओं तथा अन्य विविध जीवों को एकत्र देख रहा हूं। मैं कमल पर आसीन ब्रह्म, शिवजी तथा समस्त ऋषियों एवं दिव्य सर्पों को देख रहा हूं।

Lord in Your Supreme Form, I find,

All gods and beings of different kind,

Lord Shiva, all sages and serpents divine,

Shining on lotus sheet, Brahma Benign.

भगवन्! तुम्हारी देह में मैं देखता सुर-गण सभी।
मैं देखता हूं देव! इसमें प्राणियों का संघ भी॥
शुभ कमल आसन पर इसी में ब्रह्मदेव विराजते।
इसमें महेश्वर और ऋषीगण, दिव्य पन्नग साजते॥

अर्जुन; ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु; ब्रह्माण्ड के प्रथम प्राणी कमल लोक स्थित ब्रह्मा एवं दिव्य सर्प जिस पर गर्भाशयी विष्णु ब्रह्माण्ड के अधोतल में शयन करते हैं; अपने रथ में एक ही स्थान पर बैठे बैठे देखता है-

अगर ख्याल निर्गुण ब्रह्म का भाव अपनाता है - तो समभाव समदृष्टि की युक्ति यानि भावातीत ध्यान (Transcendental Meditation) द्वारा वह सहजता से निर्वाण परमधाम में प्रवेश कर, परमपद प्राप्त कर, विश्राम पाता है। अत: अखंड शांति व विश्राम पाने हेतु समभाव और समदृष्टि की युक्ति - यानि सजन भाव (ध्यान मार्ग) की पढ़ाई करने के लिए सब तत्पर हो जाओ और इस हेतु ध्यान सत्संग का लाभ उठाओ। ❑

अस्थिर संसार

—स्वामी श्री रामसुखदास

यह सबके अनुभव की बात है कि यह सब-का-सब दृश्य अदृश्य हो रहा है। यह जो संसार दिख रहा है, यह मिट रहा है। एक क्षण भी इसमें स्थिरता नहीं है। इसमें स्थिरता मानने से ही राग-द्वेषादि द्वन्द्व होते हैं –

भ० गीता (7.27) में श्रीकृष्ण के अनुसार –

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।

सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप॥

हे भरतवंशी अर्जुन! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न सुख-दु:खादि द्वन्द्वरूप मोह से सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञात को प्राप्त हो रहे हैं।

Under false influence of
Pair of opposites like pleasure and pain,
That born of hated and desire,
Beings all remain in ignorance sustained.

राग और द्वेष से ही सब द्वन्द्व पैदा होते हैं। इन द्वन्द्वों से मोहित होकर यह जितना भी प्राणी समुदाय है; वास्तविकता को नहीं जानता। इस द्वन्द्व से ही सम्मोह पैदा होता है। इस कारण वह तत्व को जान नहीं सकता। अत: राग-द्वेष, हर्ष-शोक पैदा होते हैं-नश्वर शरीर और संसार को स्थिर मानने से ऐसा है। यह सबके अनुभव की बात है कि ये स्थिर नहीं है। सन्तों ने कहा है –

काची काया मन अथिर, थिर-थिर काम करंत।

ज्यों-ज्यों नर निधड़क फिरै, त्यों-त्यों काल हसंत॥

युधिष्ठिर जी ने महा० वन० 13/116 में कहा है –

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषा: स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमत: परम्॥

इससे बढ़कर क्या आश्चर्य होगा कि सब-के-सब अदर्शन में जा रहे हैं, यमराज के घर जा रहे हैं और इच्छा करते हैं स्थिरता की। जो स्थिरता कभी रहती नहीं, और अभी भी स्थिरता है नहीं; और कभी भी स्थिरता रहेगी नहीं।

यहां तो केवल सेवा करने के लिए आना हुआ है।

शरीर से, मन से, वाणी से, पदार्थों से, योग्यता से, पद से, अधिकार से-

औरों की सेवा बन जाय, औरों को सुख हो जाय, औरों का भला हो जाय, औरों का हित हो जाय-यह काम हमें करना है। इसमें बाधा होती है – संग्रह कर लें और सुख भोगें अर्थात् संग्रह करने की और सुख भोगने की आसक्ति।

एक परमात्मतत्व की प्राप्ति के लिए ही हमारा आना हुआ है।

परमात्मतत्व को प्राप्त करना है। पर यह तब होगा, जब इस संसार को अप्राप्त मानें। संसार प्राप्त नहीं हुआ है। हम अचल हैं और यह सब चल है। चल के साथ मिलने से अपने में अस्थिरता मालूम देती है। स्थिर होते हुए भी अपनी स्थिरता का अनुभव नहीं होता।

जैसे हम गाड़ी में जा रहे हैं और गाड़ी किसी छोटे स्टेशन पर ठहर गयी; क्योंकि सामने से दूसरी गाड़ी आ रही है। वह गाड़ी आकर दूसरी लाइन में ठहर जाती है। हम उस गाड़ी की तरफ देखते हैं। वह गाड़ी चल पड़ती है तो मालूम होता है कि हम चल रहे हैं; जबकि हमारी गाड़ी स्थिर है।

ऐसे ही यह शरीर-संसाररूपी गाड़ी चल रही है। उधर दृष्टि रहने से हम देखते हैं कि हम जवान हो रहे हैं, हम बूढ़े हो रहे हैं आदि। ऐसा दिखता है कि हम जा रहे हैं; **पर जा रहा है शरीर।** इस प्रकार शरीर और संसार को तो स्थिर मान लिया; परन्तु अपने को जाने वाला मान लिया। शरीर और संसार को स्थिर मानने से द्वन्द्व पैदा होते हैं। द्वन्द्वों से मोह पैदा होता है। इस वास्ते जो द्वन्द्व मोह से रहित होते हैं, वे दृढ़व्रती होकर भगवान् का भजन करते हैं –

घर कीन्हें घर जात है घर छांड़े घर जाइ।

तुलसी घर बन बीचहीं राम प्रेम पुर छाइ॥

तुलसीदास कहते हैं कि घर करने से (गृहस्थी में रहने से) अपना असली घर (परलोक) नष्ट हो जाता है और घर छोड़ने से (संन्यास ग्रहण करने से) यहां का घर (गृहस्थी) नष्ट होता है। अतएव तू घर और वनके बीच में ही (अर्थात् घर ही में गृह त्यागी की भांति रहकर) श्रीरामजी के प्रेम की पुरी बसा। इसीलिए भगवान्

श्रीकृष्ण भ० गीता में 2.45 में आज्ञा देते हैं कि तुम निर्द्वन्द्व हो जाओ –

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥

वेदों में मुख्यतया प्रकृति के तीनों गुणों का वर्णन हुआ है।

हे अर्जुन! इन तीनों (सत्व, रज और तम) गुणों से ऊपर उठो। समस्त द्वैतों और लाभ तथा सुरक्षा की सारी चिन्ताओं से मुक्त होकर, आत्म परायण बनो।

Three gunas, modes of prakriti,
The vedas deal,
Evolutes of worldly enjoyments,
And their means they reveal,
Arjuna, arise above all and shake them off,
Control thy mind, peace to feel.

हैं वेद त्रिगुणों के विषय, तुम गुणातीत महान् हो।
तज योग क्षेम व द्वन्द्व नित सत्वस्थ आत्मावान् हो॥

हम निर्द्वन्द्व कब होंगे?

जब शरीर और संसार को अस्थिर मानेंगे;

तब अस्थिर मानने से फिर राग द्वेष नहीं होंगे।

जनम मरण इस देह का, होवे बारम्बार।
मरे कभी नहीं आत्मा, अविनाशी विस्तार॥
देह को मरता देख कर, फिर चिन्ता क्यों होय?
सदा अमर है आत्मा, यह जानो सब कोय॥

अत: भगवान श्री कृष्ण (2.24) में समझाते हैं –

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्य: सर्वगत: स्थाणुरचलोऽयं सनातन:॥

यह आत्मा अखंडित तथा अघुलनशील है। इसे न तो जलाया जा सकता है, न ही सुखाया जा सकता है। यह शाश्वत, सर्वव्यापी, अविकारी, स्थिर तथा सदैव एक सा रहने वाला है।

छिदने न जलने और गलने सूखने वाला कभी।
यह नित्य निश्चल, थिर, सनातन और है सर्वत्र भी॥
ब्रह्म ज्ञान को समझ ले, करे मोह का त्याग।
मन बुद्धि वश काम कर, ब्रह्म से हो अनुराग॥

पराक्षेत्र में परमात्मा का अनुभव

✍ महर्षि श्री महेश योगी

जो भीतर आत्मा है, वही पहले से ही तुम हो। केवल उसे देखना आरम्भ करो। प्यास लगने पर पीना आरम्भ कर दो। दु:ख सहने का अभ्यास करने और समय नष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है। **''जीवन संघर्ष है''** –

'यह वही लोग कहते हैं,' जो यह नहीं जानते कि जीवन कैसे जीना चाहिए?

''यह रोग असाध्य है'' – यह वही कहते हैं, जो उसका निदान नहीं जानते।

परन्तु दूसरों के लिए यह साध्य है।

''जीवन कैसा होना चाहिए?'' इसी के अज्ञान से संसार में तनाव, दु:ख और कष्ट फैले हुए हैं।

बैंक से सम्बन्ध छूट गया है। इसीलिए बाजार में दु:ख और तनाव का अनुभव हो रहा है। बाहरी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, अपने भीतर सत्–चित्–आनन्द के क्षेत्र से सम्बन्ध जोड़ना, जीवन का पहला कार्य है। दिन आरम्भ होने पर, कोई काम आरम्भ करने से पहले, ध्यान यज्ञ करना चाहिए। तभी काम सफल और सबल होंगे और हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता के साथ होगी। प्रकृति के नियम हमारे अनुकूल रहेंगे।

जीवन की भीतरी (आध्यात्मिक) और बाहरी (सांसारिक) प्रतिभाओं का एक साथ अनुभव करना ही, जीवन का पूरा पूरा उपयोग है। ध्यान (Meditation) एक क्रिया है, जो सबके लिए सुलभ है। भीतरी और बाहरी जीवन का यह सन्देश नया नहीं है। बाईबिल में भी कहा है –

> **"Seek ye first the kingdom of heaven and his righteousness and all other things shall be added unto thee."**

''**पहले परमात्मा का राज्य प्राप्त करो। तुम्हें अन्य सभी वस्तुओं की उपलब्धि करा दी जायेगी।**''

भीतरी आध्यात्मिक जीवन और उससे समृद्ध किया हुआ बाहर का व्यावहारिक जीवन, का यही पुराना संदेश है। बिना अपवाद के प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है कि वह अपनी आन्तरिक एवं बाह्य जीवन की समस्त प्रतिभाओं को उपयोग करे। अपने भीतर परा के क्षेत्र में परमात्मा का अनुभव हो सकता है और यह सरल कैसे है?

1) पहले तो परमात्मा अनन्त प्रतिभाओं से सम्पन्न है।

2) दूसरे उनका सत्-चित्-आनन्द का क्षेत्र सुख एवं आनन्द का स्त्रोत है, और वह अनन्त भण्डार बाहर नहीं-भीतर ही है।

3) तीसरा हमारी वृत्ति सदा स्वभावत; अधिक आनन्द की ओर जीने की है।

अधिक आनन्द अथवा आत्मानन्द के अनुभव के लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। साधारण तौर पर मन अधिक आनन्द चाहता है। और यदि आनन्द का भण्डार हमारे भीतर हो, तो उसका अनुभव करने में अधिक समय क्यों लगना चाहिए? केवल उसका आनन्द लेना आरम्भ करना चाहिए। सहज बुद्धि से सोचने पर यह कठिन नहीं दिखता। वह कठिन कैसे हो सकता है?

यह ईश्वर का अनन्त आनन्द भण्डार है और हमारे भीतर है, तो उसे बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-104 : ब्रह्मा कहते यज्ञ संग, रच कर सृष्टि महान।
इच्छित फल दे यज्ञ यह, यही करे उत्थान॥

ब्रह्मा ने महान सृष्टि बनाकर एक ध्यान यज्ञ भी बना दिया। यह यज्ञ मनोवांछित फल देता है और इसी से उत्थान होता है। कल्प के प्रारम्भ में ही ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना के साथ साथ इस यज्ञ की भी रचना की; और मनुष्यों से कहा कि यह यज्ञ, तुम लोगों के उत्थान करने वाला हो। यह तुम्हारी सभी मनोवांछित कामनाओं को पूरा करने वाला हो। सृष्टि में निर्जीव वस्तुएं-सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, पृथ्वी, ग्रह तारों की शक्तियां जिन्हें देवता कहते हैं और अनन्त (84

लाख) योनियों के प्राणी आते हैं - यह हम जानते हैं।

इन्हीं के साथ रचे गये यज्ञ का स्वरूप क्या था जिसे मनुष्य जन्म लेते ही करने लगा और जो यज्ञ उसके उत्थान एवं मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाला था? इसको समझने के लिये हमें एक नव-जात शिशु का सूक्ष्मता से अध्ययन करना होगा। कि; वह उस समय क्या करता है और उसमें यह किस तरह पिरोया हुआ है?

एक बच्चा पृथ्वी पर आते ही दो तरह के कार्य करता है। पहला वह दिन-रात में अधिक से अधिक समय तक (लगभग 20-22 घंटे) शान्त निष्क्रिय पड़ा रहता है। बाह्यरूप से देखने पर लगता है कि; वह सोया हुआ है। परन्तु सोया हुआ है या ध्यान में डूबा हुआ है - निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है। निश्चय ही उस समय उसकी बुद्धि का विकास नहीं हुआ रहता है, इसलिये उस निष्क्रिय अवस्था में बुद्धि की सक्रियता का प्रश्न ही नहीं उठता। वह जागृत अवस्था में आता है - तब रोता है, हंसता है, दूध पीता है, और हाथ-पैर चलाता है।

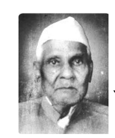

इन क्रियाओं में भी बुद्धि का प्रयोग नहीं होता।

ये क्रियाएं निश्चित रूप से स्वाभाविक होती हैं। अत: इस काल में वह; या तो ध्यान करता है, अथवा स्वाभाविक क्रिया करता है।

अगर वह इस काल में कोई यज्ञ करता है - तो उसका स्वरूप ध्यान और स्वाभाविक क्रिया के सिवा और क्या हो सकता है?

हम यह भी देखते हैं कि ये दोनों बातें, उसकी उन्नति तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती हैं। निष्कर्ष यही निकलता है कि कल्प के आदि में ब्रह्मा ने जो यज्ञ रचा था - वह ध्यान तथा स्वाभाविक क्रिया ही है। यह मनुष्य के जीवन में प्रारंभ से ही प्राकृतिक रूप से पिरोई हुई है और उसकी उन्नति तथा मनोवांछित फल देने में भी सक्षम है।

बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता है; मां-बाप और परिवार के सदस्य उसे प्रयत्नपूर्वक अधिक समय तक जगाये रखते हैं और तरह-तरह के खिलौनों आदि से उसको अस्वाभाविक क्रियाओं की ओर मोड़ने लगते हैं। इससे उसके यज्ञ (ध्यान और स्वाभाविक क्रिया) में बाधा पड़ती है। और ब्रह्म की शक्ति भीतर से बाहर लाकर

बाह्य क्रियाओं में उपयोग करने की उसकी क्षमता कम होती जाती है।

कुछ और बड़ा होने पर जब वह शरीर को स्वस्थ रखने तथा बुद्धि के प्रयोग द्वारा जीवन की आवश्यकताओं के पूरा होने की बात देखता-सुनता और जानने लगता है, तब स्वाभाविक क्रियाएं और कम हो जाती हैं। बुद्धि के विकास की प्रक्रिया और बढ़ने के साथ साथ वह यज्ञ की दोनों बातों से विरत होकर एक साधारण मनुष्य की तरह जीने लगता है। फलस्वरूप उसके मन का विकास (यज्ञ द्वारा होने वाला उत्थान) रुक जाता है और उसकी इच्छाओं की पूर्ति भी पहले की अपेक्षा कम मात्रा में होने लगती है। निश्चित ही यह उसके शान्तिमय सुखी जीवन को अधिक अशान्ति और दुख की ओर मोड़ देता है। समय बीतने के साथ साथ वह इसी दिशा में प्रगति करता है। मनुष्य के जीवन में आयु बढ़ने के साथ साथ बढ़ते हुए दुख का कारण, ब्रह्म द्वारा कल्प के आरंभ में रचे गये यज्ञ का अभाव हो जाना ही है। ऊपर भ० गीता के (3.10) का ही तात्पर्य प्रस्तुत किया गया है –

सहयज्ञा: प्रजा: सृष्टा पुरोवाच प्रजापति:।
अनेनप्रसाविष्यध्वमेष वोऽसित्वष्ट कामधुक्॥

सृष्टि के प्रारम्भ में समस्त प्राणियों के स्वामी (प्रजापति) ने विष्णु के लिए यज्ञ सहित मनुष्यों और देवताओं की सन्ततियों को रचा और उसने कहा,

''तुम इस यज्ञ से सुखी रहो। क्योंकि इसके करने से तुम्हें सुखपूर्वक रहने तथा मुक्ति प्राप्त करने के लिए समस्त वांछित वस्तुएं प्राप्त हो सकेंगी।''

Having Created mankind,
With spirit of sacrifice,
In the beginning of creation,
The Creator gave advice,
Multiply, by selfless service,
And enjoy the bliss, O, Wise.

विधि ने प्रजा के साथ पहिले यज्ञ को रच के कहा।
पूरे करे यह सब मनोरथ, वृद्धि हो इससे महा॥

भगवान् ने इस भौतिक जगत को इसलिए रचा है कि बद्ध जीव यह सीख सकें कि; वे विष्णु को प्रसन्न करने के लिए किस प्रकार यज्ञ करें? जिससे वे इस जगत् में चिन्ता रहित होकर सुख पूर्वक रह सकें; तथा इस भौतिक देह का अन्त होने पर भगवद्धाम को जा सकें। बद्ध जीव के लिए ही यह सम्पूर्ण कार्यक्रम है। यज्ञ करने से बद्ध जीव क्रमश: भावातीत (Transcendental) होते हैं और सभी प्रकार से देवतुल्य बनते हैं।

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (पचास) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश; अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार के जपकक्ष में प्रात: 11.00 बजे से 12.30 बजे, सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक और उसी मन्दिर के Hall में पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 3 बजे से सायं 5 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन स्टेट-2, हिसार-125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER